Volume-11, No. 1 Feb.-2024, pp. Hin.22-24

# 'ध्रुवस्वामिनी' नवीन मूल्यों का स्थापकः एक अध्ययन

**डॉ. हरीश कुमार कसाना,** असि. प्रोफेसर
हिंदी विभाग
डी0 एन0 (पी0जी0) कॉलेज गुलावठी
बुलंदशहर उ. प्र. भारत।

**सार–**
हिंदी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार जयशंकर प्रसाद जी एक अप्रतिम नाटककार के रूप में विख्यात हैं। इनका अधिकांश साहित्य एतिहासिक पौराणिक पृष्ठभूमि पर केन्द्रित रहा है। प्रसाद जी का साहित्य सृजन का उद्देश्य था कि समाज को इतिहास, पुराण आदि का ज्ञान भी हो जाये तथा आनंद एवं रस कि प्राप्ति भी हो जाये। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर प्रसाद जी सशक्त विधा नाटक में श्रेष्ठ साहित्य सृजन किया। प्रसाद जी का मानना था कि इतिहास के ज्ञान से बहुतायत अनुभव प्राप्त कर पूर्व में हुई त्रुटियों की भविष्य में पुनरावृति पर विराम लगाया जा सके।
**मुख्य शब्द**– अनमेल विवाह, ध्रुवस्वामिनी, धर्म–विवाह।

प्रसाद जी का मूल दर्शन राष्ट्रीय जागरण था। भारत के गरिमामयी अनुकरणीय इतिहास के द्वारा प्रसाद जी सामाजिक एवं राष्ट्रीय जागरण को सम्बद्ध करते हैं। एक कुशल शोधक के समान प्रसाद जी तटस्थ भाव से अपने मौलिक एवं निष्कलंक विचारों को प्रकट कटे हैं। इस संबंध में श्री रमेशचंद शाह का कथन उल्लेखनीय है–"प्रसाद जी अपने युग की राष्ट्रीय भावनाओं को प्रतिबिम्बित करते थे पर उनका इतिहास बोध सिर्फ भावनात्मक नहीं था। भारतीय इतिहास का उनका ज्ञान बहुत गहरा था और उसके बारे में अपनी निर्मोह सत्य् शोधक दृष्टि के चलते उनकी विचारणा बहुत मौलिक और स्वतंत्रता थी।" (1)

नाटक विधा का सृजन अत्यंत महत्वपूर्ण इसलिए माना जाता है क्योंकि नाटक का सृजन–श्रवण, पठन तथा दर्शन तीनों रूपों में ग्रहण किया जाता है। साहित्य की एकमात्र विधा नाटक ही है जिसका प्रदर्शन भी होता है। इस विधा के द्वारा ही प्रसाद भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करने के इच्छुक है। इस उद्देश्य से ही प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, राज्यश्री तथा ध्रुवस्वामिनी आदि नाटकों की रचना की तथा समाज के समक्ष इतिहास को नवस्वरूप में प्रस्तुत किया। प्रसाद जी के नाटकों पर कवित्वमयी भाषा का आरोप लगाया गया तथा विभिन्न नाटकीय दृष्टियों से देखते हुए अन्ततः कहा गया कि ये नाटक रंगमंच पर खेले नहीं जा सकते। इस सन्दर्भ में प्रसाद जी का मुह तोड़ उत्तर था कि– "नाटक मंच के लिए नहीं होता, मंच नाटक के लिए होता है।" इस कथन के द्वारा प्रसाद जी ने आलोचकों पर चुप्पी का बंधन तो लगा दिया प्रसाद जी ने स्वयं इन प्रश्नों से उभरने का संकल्प लिया तथा सन 1933 ई० में प्रसाद जी ने रंगमंच को ध्यान में रखकर पूर्ण संतुलित नाटक ध्रुवस्वामिनी का सृजन किया। प्रसाद का यह नाटक सर्वथा रंगमंचीय अनुकूलता प्राप्त था। रंगमंचीय उपयुक्तता के लिए ध्रुवस्वामिनी में संक्षिप्त संवाद, सीमित पात्र, सीमित दृश्य एवं अंक, संक्षिप्त देशकाल, सबल कथानक, सुदृढ़ भाषा शैली तथा निश्चित उद्देश्य आदि का निर्वाह किया गया। इस नाटक के द्वारा प्रसाद सम्बन्धी आलोचकों के मुंह बंद हो गए।

ध्रुवस्वामिनी नाटक में प्रसाद जी ने विभिन्न परम्पराओं, मान्यताओं पर कटाक्ष किया है। समस्याओं को उभारा है तथा दृढ़ता से उनका खंडन किया है। समसामयिकता का प्रभाव नाटक को नवीन उद्देश्यों में सफल बना गया है। ध्रुवस्वामिनी नाटक में प्रसाद जी ने विभिन्न पारंपरिक मान्यताओं जैसे–अनमेल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, नारी शोषण तथा योग्य शासक आदि पर नवीनरूप से दृष्टि केन्द्रित की है। प्रसाद जी का यह नाटक नारी स्वायत्ता का समर्थन करता है। नाटक के अंतर्गत विभिन्न दृष्टियों से

उल्लेखित समस्याओं पर विचार प्रस्तुत किये गए हैं। नाटक के मूल में समाज में व्याप्त एक गंभीर समस्या अनमेल विवाह की समस्या है। नाटक में प्रदर्शित किया गया है कि एक योग्य पुरुष पति रूप में किस प्रकार एक सुयोग्य स्त्री का शोषण करता है तथा साथ ही भिन्न–भिन्न समस्याओं का जन्म होता है। इस सम्बन्ध में डॉ. उमाशंकर सिंह का कथन है–"ध्रुवस्वामिनी कि मूल समस्या अनमेल विवाह की है। नाटककार का उद्देश्य पति कि योग्यता कि स्थिति में नारी को विवाह मोक्ष और पुनर्विवाह कि अनुमति प्रदान करना है। इस समस्या का समाधान प्रसाद ने गुप्तकाल की एतिहासिक पृष्ठभूमि में किया है।"(2)

समाज में अनमेल विवाह से अनेकानेक समस्याओं का जन्म होता है। धर्मशास्त्र विवाह संस्कार द्वारा एक स्त्री के सर्वाधिकार छीनकर एक पुरुष को समर्पित कर देता है। यह सर्वथा एकपक्षीय है अर्थात हेय है। नाटक में 'मन्दाकिनी' इस एकपक्षीय दृष्टिकोण को अनुचित समझती है नारी के सशक्त रूप को प्रदर्षित करती है तथा धर्मशास्त्र के ज्ञाता पुरोहित से प्रश्न करती है–"आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म बंधन में बांधकर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार–कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलंब मांग सकें। क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से संतुष्ट रहने कि आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं।" (3)

नारी जीवन में अनमेल विवाह, पैशाचिक विवाह सिद्ध होता है। अनमेल विवाह से विवाह का आधार, मधुर सम्भाषण समाप्त होता है। जिन कार्यों को नारी करने कि इच्छुक नहीं होती है। वे उससे बलपूर्वक कराए जाते हैं तथा नारी दीन–हीन अवस्था में असहायतावश उन्हें करने को विवश होती है। नाटक में एक स्थान पर ध्रुवस्वामिनी नारी सम्बन्धी पुरुष प्रवृत्ति पर कटाक्ष करती हुई कहती है। "पुरूषों ने स्त्रियों को अपनी पशु संपत्ति समझकर उस पर अत्याचार करने का जो अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता।" (4)

ध्रुवस्वामिनी शांतिकर्म के लिए आये हुए पुरोहित से स्पष्ट शब्दों में कहती है।

"धर्म के नाम पर स्त्री कि आज्ञाकारिता की यह पैशाचिक परीक्षा मुझसे बलपूर्वक ली गयी है। पुरोहित ! तुमने जो मेरा राक्षस विवाह कराया है, उसका उत्सव भी कितमा सुंदर है। वह जन–संहार देखो, अभी उस प्रकोष्ठ में रक्त से सनी हुई शकराज की लोथ पड़ी होगी। कितने ही सैनिक दम तोड़ते होंगे और इस रक्त धारा में तिरती हुई मै राक्षसी–सी साँस ले रही हूँ।" (5)

भारतीय संस्कारों में स्त्री को सदैव पूज्यनीय माना गया है। फिर भी यथार्थ स्थिति इसके ठीक विपरीत है। समकालीन समसामियकता को देखते हुए स्त्री की पूज्यनीयता लोप होती प्रतीत होती है। स्त्री, पुरुष को अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है परन्तु पुरुष अपनी कलुषित प्रवत्ति से स्त्री का तिरस्कार करता है। नाटक में मन्दाकिनी कहती है–

"स्त्रियों के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलंब खोजने वाले हाथों से ये पुरूषों के चरणों, को पकडती हैं और वे सदैव इनको तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा कि भिक्षा से उपकृत करते हैं।" (6)

स्त्रियों की पराजित मनोवृति का कारण ध्रुवस्वामिनी धर्म और समाज के साथ–साथ वर्षों से चले आ रहे पीढ़ी दर पीढ़ी के पुरुष आश्रय को भी मानती हैं। ध्रुवस्वामिनी कहती है– "पराधीनता की एक परम्परा–सी उनकी नस–नस में, उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गयी है। उन्हें समझकर भी भूल करनी पड़ती है।" (7)

नाटक की मूल समस्या अनमेल विवाह को प्रसाद जी ने धर्मशास्त्र से उठाया है तथा प्रदर्शित किया है कि अनमेल विवाह से अनेकों समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इस स्वाभाविक समस्या का निराकरण भी प्रसाद जी धर्मशास्त्र से निकलते हैं। प्रथम वे पुरोहित के द्वारा विवाह के विशुद्ध रूप को परिभाषित कराते हैं तदुपरांत समस्या का निराकरण प्रस्तुत करते हैं। पुरोहित के अनुसार–"स्त्री और पुरुष की परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार–रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल हैं।" (8)

समस्या का निराकरण देते हुए पुरोहित जी निर्णय देते हैं–"विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रांतिपूर्ण बंधन में बांध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पद–दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म–विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते, परन्तु यह संबंध उन प्रमाणों से भी विहीन है और भी (रामगुप्त को देखकर) यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं पर गौरव से नष्ट

आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी–क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं है।" (9)

शिखरस्वामी के क्लीव शब्द पर आपत्ति करने पर पुरोहित कहता है–"क्लीव! श्री कृष्णा ने अर्जुन को क्लीव किसलिए कहा। जिसे अपनी स्त्री को दुसरे की अंकगामिनी बनने के लिए भेजने में कोई संकोच नहीं वह क्लीव नहीं तो और क्या है? मै स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।" (10)

नाटक में व्याप्त समस्त समस्याएं राज्य में अयोग्य शासक के होने से उत्पन्न प्रदर्शित होती हैं निष्कंटक रूप में स्वीकारा गया है कि एक अयोग्य व्यक्ति यदि राजा बनेगा तब वह अदूरदर्शी, अन्यायी, पापी, दुराचारी, दुस्थ, चरित्रहीन, डरपोक, अविवेकी, लोभी, अराजनैतिक, लोलुप आदि उपाधियों से अलंकृत होगा। इस प्रकार की स्थिति सर्वथा राज्य तथा प्रजा दोनों के प्रतिकूल होगी। वह प्रत्येक स्थिति में अपने स्वार्थ साध्य में संलग्न रहेगा। उसे अपना जीवन, राज्य, परिवार तथा प्रजा सभी से अधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण प्रतीत होगा। वह सर्वत्र चाटुकारों से घिरा रहेगा तथा अपने अविवेक से स्वयं तथा राज्य दोनों को हानि पहुंचाएगा। नाटक में रामगुप्त इस प्रकार का राजा ही प्रतीत होता है। वह अयोग्य होते हुए भी बलात रूप से अधर्म से राजा बनता है। सर्वत्र द्राक्षासव में डूबा रहता है। राज्य में शकों का संकट आने पर वह राज्य रक्षा के उपाय के स्थान पर स्व रक्षा का मार्ग प्रथमतरू खोजना उपयुक्त समझता है तथा इस कारण वह शकराज की अनुपयुक्त मांग तक को मान लेता है। रामगुप्त इस लोलुपता में अपनी महारानी, देश की गौरव लक्ष्मी महादेवी ध्रुवस्वामिनी तक को शत्रु को उपहार में देने तक की अनुचित मांग को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। इस घटनाक्रम को देख मंदाकिनी अत्यंत चिंतित होती है तथा वह कहती है–"भयानक समस्या है। मूर्खों ने स्वार्थ के लिए साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है। सच है वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनितिक छलछंद की धुल उड़ती है।" (11)

प्रसाद के रचनाकाल में ही समाज में एक गंभीर समस्या व्याप्त थी। विधवा अथवा परित्यक्त स्त्री को त्याज्य दृष्टि से देखा जाता था। इस प्रकार की स्त्री को कूलाक्शनी समझा जाता था। विधवा स्त्री समाज का अभिशाप बन जाती थी। समाज की भर्त्सना, सर्वत्र तिरस्कार आदि विधवा की नियति बन जाते थे। विधवा का पुनर्विवाह हेय माना जाता था। स्त्री को सती प्रथा की ओर बढाया जाता था इस प्रकार की स्थिति में प्रसाद जी समाज में व्याप्त संकुचित दृष्टि से नारी का उद्धार करवाना चाहते थे। अतरूनाटक के अंतर्गत रामगुप्त की मृत्यु के उपरांत विधवा ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त से पुनर्विवाह का संकेत करना। नारी जीवन की इस गंभीर समस्या का निराकरण करना ही है। नाटक की यह अंतिम घटना यही प्रदर्शित करती है कि विधवा स्त्री का पुनर्विवाह कोई पाप कर्म नहीं है अपितु समाज का एक दायित्व है। साथ ही अनमेल विवाह बंधन में बंधे स्त्री–पुरुष में दोनों को ही यह अधिकार है कि वे धर्मसंगत तथ्यों के साथ एक–दूसरे से अलग होने का पूर्ण अधिकार भी रखते हैं।

इस प्रकार यह नाटक प्रसाद जी द्वारा हिंदी नाटय साहित्य की एक अनुपम सोददेश्य देन है। यह नाटक नाटय शास्त्रीय नियमों का पालन करने के साथ ही समसामयिक एवं परंपरागत मान्यताओं पर कटाक्ष भी करता है जो कि एक साहित्यिक कर्म का उद्देश्य भी है।

## सन्दर्भ सूची

1. रमेशचंद्र शाह, जयशंकर प्रसाद, साहित्य अकादमी रवीन्द्र भवन–35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली –01
2. डॉ. उमाशंकर सिंह, स्मृति और अनुभूति, उर्जा प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.व. 1983 पृष्ठ सं. 64
3. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, विवेक प्रकाशन, मेरठ, प्र.व.2013 पृष्ठ सं. 33 .
4. वही पृष्ठ सं. 18 द्य
5. वही पृष्ठ सं. 33 द्य
6. वही पृष्ठ सं. 34 द्य
7. वही पृष्ठ सं. 34 द्य
8. वही पृष्ठ सं. 33 द्य
9. वही पृष्ठ सं.39 द्य
10. वही पृष्ठ सं. 39 द्य
11. वही पृष्ठ सं. 14 द्य